रामचरित्मानस

बालकाण्ड

मनु-शतरूपा तप एवं वरदान

*** सो मैं तुम्ह सन कहउँ सबु सुनु मुनीस मन लाइ। रामकथा कलि मल हरनि मंगल करनि सुहाइ॥141॥
भावार्थ:
हे मुनीश्वर भरद्वाज! मैं वह सब तुमसे कहता हूँ मन लगाकर सुनो। श्री रामचन्द्रजी की कथा कलियुग के पापों को हरने वाली, कल्याण करने वाली और बड़ी सुंदर है॥141॥
चौपाई :
*** स्वायंभू मनु अरु सतरूपा। जिन्ह तें भै नरसृष्टि अनूपा॥ दंपति धरम आचरन नीका। अजहुँ गाव श्रुति जिन्ह कै लीका॥1॥
भावार्थ:
स्वायम्भुव मनु और (उनकी पत्नी) शतरूपा, जिनसे मनुष्यों की यह अनुपम सृष्टि हुई इन दोनों पति-पत्नी के धर्म और आचरण बहुत अच्छे थे। आज भी वेद जिनकी मर्यादा का गान करते हैं॥1॥
*** नृप उत्तानपाद सुत तासू। ध्रुव हरिभगत भयउ सुत जासू॥ लघु सुत नाम प्रियब्रत ताही। बेद पुरान प्रसंसहिं जाही॥2॥
भावार्थ:
राजा उत्तानपाद उनके पुत्र थे, जिनके पुत्र (प्रसिद्ध) हरिभक्त ध्रुवजी हुए। उन (मनुजी) के छोटे लड़के का नाम प्रियव्रत था, जिनकी प्रशंसा वेद और पुराण करते हैं॥2॥
*** देवहूति पुनि तासु कुमारी। जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी॥ आदि देव प्रभु दीनदयाला। जठर धरेउ जेहिं कपिल कृपाला॥3॥
भावार्थ:
पुनः देवहूति उनकी कन्या थी, जो कर्दम मुनि की प्यारी पत्नी हुई और जिन्होंने आदि देव, दीनों पर दया करने वाले समर्थ एवं कृपालु भगवान कपिल को गर्भ में धारण किया॥3॥
*** सांख्य सास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना। तत्व बिचार निपुन भगवाना॥ तेहिं मनु राज कीन्ह बहु काला। प्रभु आयसु सब बिधि प्रतिपाला॥4॥

भावार्थ:

तत्वों का विचार करने में अत्यन्त निपुण जिन (कपिल) भगवान ने सांख्य शास्त्र का प्रकट रूप में वर्णन किया, उन (स्वायम्भुव) मनुजी ने बहुत समय तक राज्यकिया और सब प्रकार से भगवान की आज्ञा (रूप शास्त्रों की मर्यादा) का पालन किया॥4॥

सोरठा :

*** होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथपन॥ हृदयँ बहुत दुख लाग जनम गयउ हरिभगति बिनु॥142॥

भावार्थ:

घर में रहते बुढ़ापा आ गया, परन्तु विषयों से वैराग्य नहीं होता (इस बात को सोचकर) उनके मन में बड़ा दुःख हुआ कि श्री हरि की भक्ति बिना जन्म यों ही चला गया॥142॥

चौपाई :

*** बरबस राज सुतहि तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा॥ तीरथ बर नैमिष बिख्याता। अति पुनीत साधक सिधि दाता॥1॥

भावार्थ:

तब मनुजी ने अपने पुत्र को जबर्दस्ती राज्य देकर स्वयं स्त्री सहित वन को गमन किया। अत्यन्त पवित्र और साधकों को सिद्धि देने वाला तीर्थों में श्रेष्ठ नैमिषारण्य प्रसिद्ध है॥1॥

*** बसहिं तहाँ मुनि सिद्ध समाजा। तहँ हियँ हरषि चलेउ मनु राजा॥ पंथ जात सोहहिं मतिधीरा। ग्यान भगति जनु धरें सरीरा॥2॥

भावार्थ:

वहाँ मुनियों और सिद्धों के समूह बसते हैं। राजा मनु हृदय में हर्षित होकर वहीं चले। वेधीर बुद्धि वाले राजा-रानी मार्ग में जाते हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानोंज्ञान और भक्ति ही शरीर धारण किए जा रहे हों॥2॥

*** पहुँचे जाइ धेनुमति तीरा। हरषि नहाने निरमल नीरा॥ आए मिलन सिद्ध मुनि ग्यानी। धरम धुरंधर नृपरिषि जानी॥3॥

भावार्थ:

(चलते-चलते) वे गोमती के किनारे जा पहुँचे। हर्षित होकर उन्होंने निर्मल जल में स्नान किया। उनको धर्मधुरंधर राजर्षि जानकर सिद्ध और ज्ञानी मुनि उनसे मिलने आए॥3॥

*** जहँ जहँ तीरथ रहे सुहाए। मुनिन्ह सकल सादर करवाए॥ कृस सरीर मुनिपट परिधाना। सत समाज नित सुनहिं पुराना॥4॥

भावार्थ:

जहाँ-जहाँ सुंदर तीर्थ थे, मुनियों ने आदरपूर्वक सभी तीर्थ उनको करा दिए। उनका शरीर दुर्बल हो गया था। वे मुनियों के से (वल्कल) वस्त्र धारण करते थे और संतों के समाज में नित्य पुराण

सुनते थे॥4॥

दोहा :

*** द्वादस अच्छर मंत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग। बासुदेव पद पंकरुह दंपति मन अति लाग॥143॥

भावार्थ:

और द्वादशाक्षर मन्त्र (ऊँ नमो भगवते वासुदेवाय) का प्रेम सहित जप करते थे। भगवान वासुदेव के चरणकमलों में उन राजा-रानी का मन बहुत ही लग गया॥143॥

चौपाई :

*** करहिं अहार साक फल कंदा। सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानंदा॥ पुनि हरि हेतु करन तप लागे। बारि अधार मूल फल त्यागे॥1॥

भावार्थ:

वे साग, फल और कन्द का आहार करते थे और सच्चिदानंद ब्रह्म का स्मरण करते थे। फिर वे श्री हरि के लिए तप करने लगे और मूल-फल को त्यागकर केवल जल के आधार पर रहने लगे॥1॥

*** उर अभिलाष निरंतर होई। देखिअ नयन परम प्रभु सोई॥ अगुन अखंड अनंत अनादी। जेहि चिंतहिं परमारथबादी॥2॥

भावार्थ:

हृदय में निरंतर यही अभिलाषा हुआ करती कि हम (कैसे) उन परम प्रभु को आँखों से देखें, जो निर्गुण, अखंड, अनंत और अनादि हैं और परमार्थवादी (ब्रह्मज्ञानी, तत्त्ववेत्ता) लोग जिनका चिन्तन किया करते हैं॥2॥

*** नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानंद निरुपाधि अनूपा॥ संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥3॥

भावार्थ:

जिन्हें वेद 'नेति-नेति' (यह भी नहीं, यह भी नहीं) कहकर निरूपण करते हैं। जो आनंदस्वरूप, उपाधिरहित और अनुपम हैं एवं जिनके अंश से अनेक शिव, ब्रह्मा और विष्णु भगवान प्रकट होते हैं॥3॥

*** ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीलातनु गहई॥ जौं यह बचन सत्य श्रुति भाषा। तौ हमार पूजिहि अभिलाषा॥4॥

भावार्थ:

ऐसे (महान) प्रभु भी सेवक के वश में हैं और भक्तों के लिए (दिव्य) लीला विग्रह धारण करते हैं। यदि वेदों में यह वचन सत्य कहा है, तो हमारी अभिलाषा भी अवश्य पूरी होगी॥4॥

दोहा :

*** एहि विधि बीते बरष षट सहस बारि आहार। संबत सप्त सहस्र पुनि रहे समीर अधार॥144॥
भावार्थ:
इस प्रकार जल का आहार (करके तप) करते छह हजार वर्ष बीत गए। फिर सात हजार वर्ष वे वायु के आधार पर रहे॥144॥
चौपाई :
*** बरष सहस दस त्यागेउ सोऊ। ठाढ़े रहे एक पद दोऊ ॥ बिधि हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीप आए बहु बारा॥1॥
भावार्थ:
दस हजार वर्ष तक उन्होंने वायु का आधार भी छोड़ दिया। दोनों एक पैर से खड़े रहे। उनका अपार तप देखकर ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी कई बार मनुजी के पास आए॥1॥
*** मागहु बर बहु भाँति लोभाए। परम धीर नहिं चलहिं चलाए॥ अस्थिमात्र होइ रहे सरीरा। तदपि मनाग मनहिं नहिं पीरा॥2॥
भावार्थ:
उन्होंने इन्हें अनेक प्रकार से ललचाया और कहा कि कुछ वर माँगो। पर ये परम धैर्यवान (राजा-रानी अपने तप से किसी के) डिगाए नहीं डिगे। यद्यपि उनका शरीर हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गया था, फिर भी उनके मन में जरा भी पीड़ा नहीं थी॥2॥
*** प्रभु सर्बग्य दास निज जानी। गति अनन्य तापस नृप रानी॥ मागु मागु बरु भै नभ बानी। परम गभीर कृपामृत सानी॥3॥
भावार्थ:
सर्वज्ञ प्रभु ने अनन्य गति (आश्रय) वाले तपस्वी राजा-रानी को 'निज दास' जाना। तब परम गंभीर और कृपा रूपी अमृत से सनी हुई यह आकाशवाणी हुई कि 'वर माँगो'॥3॥
*** मृतक जिआवनि गिरा सुहाई। श्रवन रंध्र होइ उर जब आई॥ हृष्ट पुष्ट तन भए सुहाए। मानहुँ अबहिं भवन ते आए॥4॥
भावार्थ:
मुर्दे को भी जिला देने वाली यह सुंदर वाणी कानों के छेदों से होकर जब हृदय में आई, तब राजा-रानी के शरीर ऐसे सुंदर और हृष्ट-पुष्ट हो गए, मानो अभी घर से आए हैं॥4॥
दोहा :
*** श्रवन सुधा सम बचन सुनि पुलक प्रफुल्लित गात। बोले मनु करि दंडवत प्रेम न हृदयँ समात॥145॥
भावार्थ:
कानों में अमृत के समान लगने वाले वचन सुनते ही उनका शरीर पुलकित और प्रफुल्लित हो गया। तब मनुजी दण्डवत करके बोले- प्रेम हृदय में समाता न था-॥145॥

चौपाई :

*** सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। बिधि हरि हर बंदित पद रेनू॥ सेवत सुलभ सकल सुखदायक। प्रनतपाल सचराचर नायक॥1॥

भावार्थ:

हे प्रभो! सुनिए, आप सेवकों के लिए कल्पवृक्ष और कामधेनु हैं। आपके चरण रज की ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी भी वंदना करते हैं। आप सेवा करने में सुलभ हैं तथा सब सुखों केदेने वाले हैं। आप शरणागत के रक्षक और जड़-चेतन के स्वामी हैं॥1॥

*** जौं अनाथ हित हम पर नेहू। तौ प्रसन्न होई यह बर देहू॥ जोसरूप बस सिव मन माहीं। जेहिं कारन मुनि जतन कराहीं॥2॥

भावार्थ:

हे अनाथों का कल्याण करने वाले! यदि हम लोगों पर आपका स्नेह है, तो प्रसन्न होकर यह वर दीजिए कि आपका जो स्वरूप शिवजी के मन में बसता है और जिस (की प्राप्ति) के लिए मुनि लोग यत्न करते हैं॥2॥

*** जो भुसुंडि मन मानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा॥ देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन॥3॥

भावार्थ:

जो काकभुशुण्डि के मन रूपी मान सरोवर में विहार करने वाला हंस है, सगुण और निर्गुण कहकर वेद जिसकी प्रशंसा करते हैं, हे शरणागत के दुःख मिटाने वाले प्रभो! ऐसी कृपा कीजिए कि हम उसी रूप को नेत्र भरकर देखें॥3॥

*** दंपति बचन परम प्रिय लागे। मृदुल बिनीत प्रेम रस पागे॥ भगत बछल प्रभु कृपानिधाना। बिस्वबास प्रगटे भगवाना॥4॥

भावार्थ:

राजा-रानी के कोमल, विनययुक्त और प्रेमरस में पगे हुए वचन भगवान को बहुत ही प्रिय लगे। भक्तवत्सल, कृपानिधान, सम्पूर्ण विश्व के निवास स्थान (या समस्त विश्व में व्यापक), सर्वसमर्थ भगवान प्रकट हो गए॥4॥

दोहा :

*** नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम। लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम॥146॥

भावार्थ:

भगवान के नीले कमल, नीलमणि और नीले (जलयुक्त) मेघ के समान (कोमल, प्रकाशमय और सरस) श्यामवर्ण (चिन्मय) शरीर की शोभा देखकर करोड़ों कामदेव भी लजा जाते हैं॥146॥

चौपाई :

*** सरद मयंक बदन छबि सींवा। चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा॥ अधर अरुन रद सुंदर नासा। बिधु कर निकर बिनिंदक हासा॥1॥

भावार्थ:

उनका मुख शरद (पूर्णिमा) के चन्द्रमा के समान छबि की सीमास्वरूप था। गाल और ठोड़ी बहुत सुंदर थे, गला शंख के समान (त्रिरेखायुक्त, चढ़ाव-उतार वाला) था। लाल होठ, दाँत और नाक अत्यन्त सुंदर थे। हँसी चन्द्रमा की किरणावली को नीचा दिखाने वाली थी॥1॥

*** नव अंबुज अंबक छबि नीकी। चितवनि ललित भावँतीजी की॥ भृकुटि मनोज चाप छबि हारी। तिलक ललाट पटल दुतिकारी॥2॥

भावार्थ:

नेत्रों की छवि नए (खिले हुए) कमल के समान बड़ी सुंदर थी। मनोहर चितवन जी को बहुत प्यारी लगती थी। टेढ़ी भौंहें कामदेव के धनुष की शोभा को हरने वाली थीं। ललाट पटल पर प्रकाशमय तिलक था॥2॥

*** कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा। कुटिल केस जनु मधुप समाजा॥ उर श्रीबत्स रुचिर बनमाला। पदिक हार भूषन मनिजाला॥3॥

भावार्थ:

कानों में मकराकृत (मछली के आकार के) कुंडल और सिर पर मुकुट सुशोभित था। टेढ़े(घुँघराले) काले बाल ऐसे सघन थे, मानो भौंरों के झुंड हों। हृदय पर श्रीवत्स, सुंदर वनमाला, रत्नजड़ित हार और मणियों के आभूषण सुशोभित थे॥3॥

*** केहरि कंधर चारु जनेऊ। बाहु बिभूषन सुंदर तेऊ॥ मकरि कर सरिस सुभग भुजदंडा। कटि निषंग कर सर कोदंडा॥4॥

भावार्थ:

सिंह की सी गर्दन थी, सुंदर जनेऊ था। भुजाओं में जो गहने थे, वे भी सुंदर थे। हाथी की सूँड़ के समान (उतार-चढ़ाव वाले) सुंदर भुजदंड थे। कमर में तरकस और हाथ में बाण और धनुष (शोभा पा रहे) थे॥4॥

दोहा :

*** तड़ित बिनिंदक पीत पट उदर रेख बर तीनि। नाभि मनोहर लेति जनु जमुन भँवर छबि छीनि॥147॥

भावार्थ:

(स्वर्ण-वर्ण का प्रकाशमय) पीताम्बर बिजली को लजाने वाला था। पेट पर सुंदर तीन रेखाएँ (त्रिवली) थीं। नाभि ऐसी मनोहर थी, मानो यमुनाजी के भँवरों की छबि को छीने लेती हो॥147॥

चौपाई :

*** पद राजीव बरनि नहिं जाहीं। मुनि मन मधुप बसहिं जेन्ह माहीं॥ बाम भाग सोभति

अनुकूला। आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला॥1॥
भावार्थ:
जिनमें मुनियों के मन रूपी भौंरे बसते हैं, भगवान के उन चरणकमलों का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता। भगवान के बाएँ भाग में सदा अनुकूल रहने वाली, शोभा की राशि जगत की मूलकारण रूपा आदि शक्ति श्री जानकीजी सुशोभित हैं॥1॥
***जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥ भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई॥2॥
भावार्थ:
जिनके अंश से गुणों की खान अगणित लक्ष्मी, पार्वती और ब्रह्माणी (त्रिदेवों की शक्तियाँ) उत्पन्न होती हैं तथा जिनकी भौंह के इशारे से ही जगत की रचना हो जाती है, वही (भगवान की स्वरूपा शक्ति) श्री सीताजी श्री रामचन्द्रजी की बाईं ओर स्थित हैं॥2॥
***छबिसमुद्र हरि रूप बिलोकी। एकटक रहे नयन पट रोकी॥ चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा॥3॥
भावार्थ:
शोभा के समुद्र श्री हरि के रूप को देखकर मनु-शतरूपा नेत्रों के पट (पलकें) रोके हुए एकटक (स्तब्ध) रह गए। उस अनुपम रूप को वे आदर सहित देख रहे थे और देखते-देखते अघाते ही न थे॥3॥
*** हरष बिबस तन दसा भुलानी। परे दंड इव गहि पद पानी॥ सिर परसे प्रभु निज कर कंजा। तुरत उठाए करुनापुंजा॥4॥
भावार्थ:
आनंद के अधिक वश में हो जाने के कारण उन्हें अपने देह की सुधि भूल गई। वे हाथों से भगवान के चरण पकड़कर दण्ड की तरह (सीधे) भूमि पर गिर पड़े। कृपा की राशि प्रभु नेअपने करकमलों से उनके मस्तकों का स्पर्श किया और उन्हें तुरंत ही उठा लिया॥4॥
दोहा :
*** बोले कृपानिधान पुनि अति प्रसन्न मोहि जानि। मागहु बर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि॥148॥
भावार्थ:
फिर कृपानिधान भगवान बोले- मुझे अत्यन्त प्रसन्न जानकर और बड़ा भारी दानी मानकर, जो मन को भाए वही वर माँग लो॥148॥
चौपाई :
*** सुनि प्रभु बचन जोरि जुग पानी। धरि धीरजु बोली मृदु बानी॥ नाथ देखि पद कमल तुम्हारे। अब पूरे सब काम हमारे॥1॥

भावार्थ:

प्रभु के वचन सुनकर, दोनों हाथ जोड़कर और धीरज धरकर राजा ने कोमल वाणी कही- हे नाथ! आपके चरणकमलों को देखकर अब हमारी सारी मनःकामनाएँ पूरी हो गईं॥1॥

*** एक लालसा बड़ि उर माहीं। सुगम अगम कहि जाति सो नाहीं॥ तुम्हहि देत अति सुगम गोसाईं। अगम लाग मोहि निज कृपनाईं॥2॥

भावार्थ:

फिर भी मन में एक बड़ी लालसा है। उसका पूरा होना सहज भी है और अत्यन्त कठिन भी, इसी से उसे कहते नहीं बनता। हे स्वामी! आपके लिए तो उसका पूरा करना बहुत सहज है, पर मुझे अपनी कृपणता (दीनता) के कारण वह अत्यन्त कठिन मालूम होता है॥2॥

*** जथा दरिद्र बिबुधतरु पाई। बहु संपति मागत सकुचाई॥ तासु प्रभाउ जान नहिं सोई। तथा हृदयँ मम संसय होई॥3॥

भावार्थ:

जैसे कोई दरिद्र कल्पवृक्ष को पाकर भी अधिक द्रव्य माँगने में संकोच करता है, क्योंकि वह उसके प्रभाव को नहीं जानता, वैसे ही मेरे हृदय में संशय हो रहा है॥3॥

*** सो तुम्ह जानहु अंतरजामी। पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी॥ सकुच बिहाइ मागु नृप मोही। मोरें नहिं अदेय कछु तोही॥4॥

भावार्थ:

हे स्वामी! आप अन्तरयामी हैं, इसलिए उसे जानते ही हैं। मेरा वह मनोरथ पूरा कीजिए। (भगवान ने कहा-) हे राजन्! संकोच छोड़कर मुझसे माँगो। तुम्हें न दे सकूँ ऐसा मेरेपास कुछ भी नहीं है॥4॥

दोहा :

***दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउँ सतिभाउ। चाहउँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ॥149॥

भावार्थ:

(राजा ने कहा-) हे दानियों के शिरोमणि! हे कृपानिधान! हे नाथ! मैं अपने मन का सच्चा भाव कहता हूँ कि मैं आपके समान पुत्र चाहता हूँ। प्रभु से भला क्या छिपाना ॥149॥

चौपाई :

*** देखि प्रीति सुनि बचन अमोले। एवमस्तु करुनानिधि बोले॥ आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होब मैं आई॥1॥

भावार्थ:

राजा की प्रीति देखकर और उनके अमूल्य वचन सुनकर करुणानिधान भगवान बोले- ऐसा ही हो। हे राजन्! मैं अपने समान (दूसरा) कहाँ जाकर खोजूँ! अतः स्वयं ही आकर तुम्हारा पुत्र बनूँगा॥1॥

*** सतरूपहिं बिलोकि कर जोरें। देबि मागु बरु जो रुचि तोरें॥ जो बरु नाथ चतुर नृप मागा। सोइ कृपाल मोहि अति प्रिय लागा॥2॥

भावार्थ:

शतरूपाजी को हाथ जोड़े देखकर भगवान ने कहा- हे देवी! तुम्हारी जो इच्छा हो, सो वर माँग लो। (शतरूपा ने कहा-) हे नाथ! चतुर राजा ने जो वर माँगा, हे कृपालु! वह मुझे बहुत ही प्रिय लगा,॥2॥

*** प्रभु परंतु सुठि होति ढिठाई। जदपि भगत हित तुम्हहि सोहाई॥ तुम्ह ब्रह्मादि जनक जग स्वामी। ब्रह्म सकल उर अंतरजामी॥3॥

भावार्थ:

परंतु हे प्रभु! बहुत ढिठाई हो रही है, यद्यपि हे भक्तों का हित करने वाले! वह ढिठाई भी आपको अच्छी ही लगती है। आप ब्रह्मा आदि के भी पिता (उत्पन्न करने वाले), जगत के स्वामी और सबके हृदय के भीतर की जानने वाले ब्रह्म हैं॥3॥

*** अस समुझत मन संसय होई। कहा जो प्रभु प्रवान पुनि सोई॥ जे निज भगत नाथ तव अहहीं। जो सुख पावहिं जो गति लहहीं॥4॥

भावार्थ:

ऐसा समझने पर मन में संदेह होता है, फिर भी प्रभु ने जो कहा वही प्रमाण (सत्य) है। (मैं तो यह माँगती हूँ कि) हे नाथ! आपके जो निज जन हैं, वे जो (अलौकिक, अखंड) सुख पाते हैं और जिस परम गति को प्राप्त होते हैं-॥4॥

दोहा :

*** सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु। सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु॥150॥

भावार्थ:

हे प्रभो! वही सुख, वही गति, वही भक्ति, वही अपने चरणों में प्रेम, वही ज्ञान और वही रहन-सहन कृपा करके हमें दीजिए॥150॥

चौपाई :

*** सुनि मृदु गूढ़ रुचिर बर रचना। कृपासिंधु बोले मृदु बचना॥ जो कछु रुचि तुम्हरे मन माहीं। मैं सो दीन्ह सब संसय नाहीं॥1॥

भावार्थ:

(रानी की) कोमल, गूढ़ और मनोहर श्रेष्ठ वाक्य रचना सुनकर कृपा के समुद्र भगवान कोमलवचन बोले- तुम्हारे मन में जो कुछ इच्छा है, वह सब मैंने तुमको दिया, इसमें कोई संदेह न समझना॥1॥

***मातु बिबेक अलौकिक तोरें। कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरें॥ बंदि चरन मनु कहेउ बहोरी।

अवर एक बिनती प्रभु मोरी॥2॥

भावार्थ:

हे माता! मेरी कृपा से तुम्हारा अलौकिक ज्ञान कभी नष्ट न होगा। तब मनु ने भगवान के चरणों की वंदना करके फिर कहा- हे प्रभु! मेरी एक विनती और है-॥2॥

*** सुत बिषइक तव पद रति होऊ। मोहि बड़ मूढ़ कहे किन कोऊ॥ मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुम्हहि अधीना॥3॥

भावार्थ:

आपके चरणों में मेरी वैसी ही प्रीति हो जैसी पुत्र के लिए पिता की होती है, चाहे मुझे कोई बड़ा भारी मूर्ख ही क्यों न कहे। जैसे मणि के बिना साँप और जल के बिना मछली (नहीं रह सकती), वैसे ही मेरा जीवन आपके अधीन रहे (आपके बिना न रह सके)॥3॥

*** अस बरु मागि चरन गहि रहेऊ। एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ॥ अब तुम्ह मम अनुसासन मानी। बसहु जाइ सुरपति रजधानी॥4॥

भावार्थ:

ऐसा वर माँगकर राजा भगवान के चरण पकड़े रह गए। तब दया के निधान भगवान ने कहा- ऐसा ही हो। अब तुम मेरी आज्ञा मानकर देवराज इन्द्र की राजधानी (अमरावती) में जाकर वास करो॥4॥

सोरठा :

*** तहँ करि भोग बिसाल तात गएँ कछु काल पुनि। होइहहु अवध भुआल तब मैं होब तुम्हार सुत॥151॥

भावार्थ:

हे तात! वहाँ (स्वर्ग के) बहुत से भोगभोगकर, कुछ काल बीत जाने पर, तुम अवध के राजा होंगे। तब मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा॥151॥

चौपाई :

***इच्छामय नरबेष सँवारें। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारें॥ अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुखदाता॥1॥

भावार्थ:

इच्छानिर्मित मनुष्य रूप सजकर मैं तुम्हारे घर प्रकट होऊँगा। हे तात! मैं अपने अंशों सहित देह धारण करके भक्तों को सुख देने वाले चरित्र करूँगा॥1॥

*** जे सुनि सादर नर बड़भागी। भव तरिहहिं ममता मद त्यागी॥ आदिसक्ति जेहिं जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया॥2॥

भावार्थ:

जिन (चरित्रों) को बड़े भाग्यशाली मनुष्य आदरसहित सुनकर, ममता और मद त्यागकर, भवसागर

से तर जाएँगे। आदिशक्ति यह मेरी (स्वरूपभूता) माया भी, जिसने जगत को उत्पन्न किया है, अवतार लेगी॥2॥

*** पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा। सत्य सत्य पन सत्य हमारा॥ पुनि पुनि अस कहि कृपानिधाना। अंतरधान भए भगवाना॥3॥

भावार्थ:

इस प्रकार मैं तुम्हारी अभिलाषा पूरी करूँगा। मेरा प्रण सत्य है, सत्य है, सत्य है। कृपानिधान भगवान बार-बार ऐसा कहकर अन्तरधान हो गए॥3॥

*** दंपति उर धरि भगत कृपाला। तेहिं आश्रम निवसे कछु काला॥ समय पाइ तनु तजि अनयासा। जाइ कीन्ह अमरावति बासा॥4॥

भावार्थ:

वे स्त्री-पुरुष (राजा-रानी) भक्तों पर कृपा करने वाले भगवान को हृदय में धारण करके कुछ काल तक उस आश्रम में रहे। फिर उन्होंने समय पाकर, सहज ही (बिना किसी कष्ट के) शरीर छोड़कर, अमरावती (इन्द्र की पुरी) में जाकर वास किया॥4॥

दोहा :

*** यह इतिहास पुनीत अति उमहि कही बृषकेतु। भरद्वाज सुनु अपर पुनि राम जनम कर हेतु॥152॥

भावार्थ:

(याज्ञवल्क्यजी कहते हैं-) हे भरद्वाज! इस अत्यन्त पवित्र इतिहास को शिवजी ने पार्वती से कहा था। अब श्रीराम के अवतार लेने का दूसरा कारण सुनो॥152॥

अगला पेज...

मासपारायण, पाँचवाँ विश्राम

रामचरित्मानस

बालकाण्ड

मनु-शतरूपा तप एवं वरदान